1936G On Likes and Dislikes

In *Jain Darshan 1936*, also unpublished notes

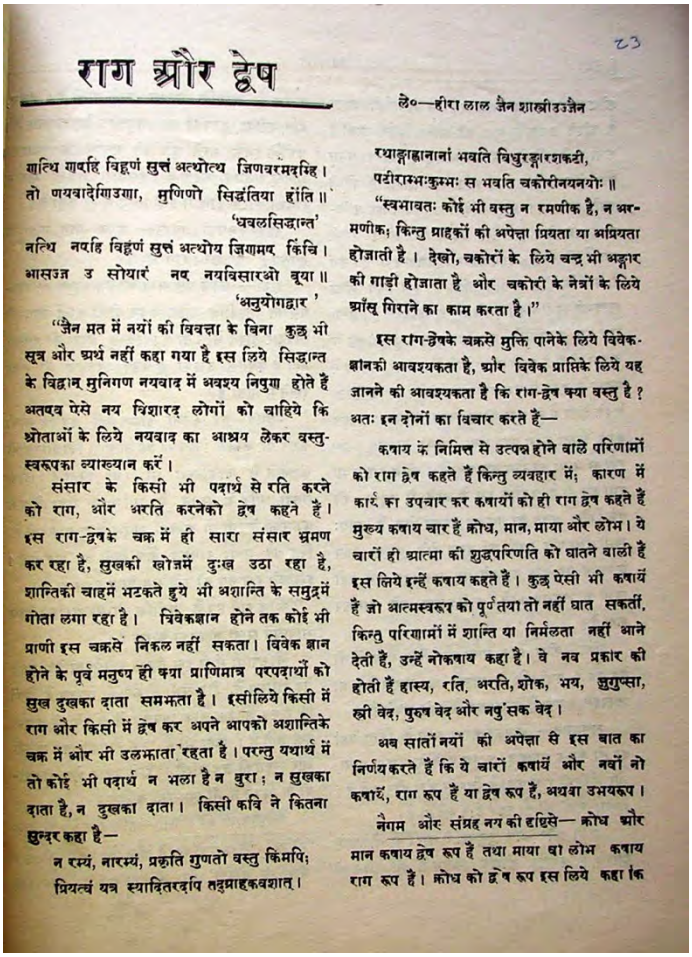

23

राग और द्वेष

ले०—हीरा लाल जैन शास्त्री उज्जैन

णत्थि णयहि विहूणं सुत्तं अत्थोत्थ जिणवरमदम्हि।
तो णयवादेणिउणा, मुणिणो सिद्धंतिया होंति॥
'धवलसिद्धान्त'

नत्थि नएहि विहूणं सुत्तं अत्थोय जिणमए किंचि।
आसज्ज उ सोयारं नय नयविसारओ बूया॥
'अनुयोगद्वार'

"जैन मत में नयों की विवक्षा के बिना कुछ भी सूत्र और अर्थ नहीं कहा गया है इस लिये सिद्धान्त के विद्वान् मुनिगण नयवाद में अवश्य निपुण होते हैं अतएव ऐसे नय विशारद लोगों को चाहिये कि श्रोताओं के लिये नयवाद का आश्रय लेकर वस्तु-स्वरूपका व्याख्यान करें।

संसार के किसी भी पदार्थ से रति करने को राग, और अरति करनेको द्वेष कहते हैं। इस राग-द्वेषके चक्र में ही सारा संसार भ्रमण कर रहा है, सुखकी खोजमें दुःख उठा रहा है, शान्तिकी चाहमें भटकते हुये भी अशान्ति के समुद्रमें गोता लगा रहा है। विवेकज्ञान होने तक कोई भी प्राणी इस चक्रसे निकल नहीं सकता। विवेक ज्ञान होने के पूर्व मनुष्य ही क्या प्राणिमात्र परपदार्थों को सुख दुखका दाता समझता है। इसीलिये किसी में राग और किसी में द्वेष कर अपने आपको अशान्तिके चक्र में और भी उलझाता रहता है। परन्तु यथार्थ में तो कोई भी पदार्थ न भला है न बुरा; न सुखका दाता है, न दुखका दाता। किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है—

न रम्यं, नारम्यं, प्रकृति गुणतो वस्तु किमपि;
प्रियत्वं यत्र स्यादितरदपि तद्ग्राहकवशात्।
रथाङ्गाह्वानां भवति विधुरङ्गारशकटी,
पटीराम्भःकुम्भः स भवति चकोरीनयनयोः॥

"स्वभावतः कोई भी वस्तु न रमणीक है, न अरमणीक; किन्तु ग्राहकों की अपेक्षा प्रियता या अप्रियता होजाती है। देखो, चकोरों के लिये चन्द्र भी अङ्गार की गाड़ी होजाता है और चकोरी के नेत्रों के लिये आँसू गिराने का काम करता है।"

इस राग-द्वेषके चक्रसे मुक्ति पानेके लिये विवेक-ज्ञानकी आवश्यकता है, और विवेक प्राप्तिके लिये यह जानने की आवश्यकता है कि राग-द्वेष क्या वस्तु है? अतः इन दोनों का विचार करते हैं—

कषाय के निमित्त से उत्पन्न होने वाले परिणामों को राग द्वेष कहते हैं किन्तु व्यवहार में; कारण में कार्य का उपचार कर कषायों को ही राग द्वेष कहते हैं मुख्य कषाय चार हैं क्रोध, मान, माया और लोभ। ये चारों ही आत्मा की शुद्धपरिणति को घातने वाली हैं इस लिये इन्हें कषाय कहते हैं। कुछ ऐसी भी कषायें हैं जो आत्मस्वरूप को पूर्णतया तो नहीं घात सकतीं, किन्तु परिणामों में शान्ति या निर्मलता नहीं आने देती हैं, उन्हें नोकषाय कहा है। वे नव प्रकार की होती हैं हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद।

अब सातों नयों की अपेक्षा से इस बात का निर्णय करते हैं कि ये चारों कषायें और नवों नो कषायें, राग रूप हैं या द्वेष रूप हैं, अथवा उभयरूप।

नैगम और संग्रह नय की दृष्टिसे— क्रोध और मान कषाय द्वेष रूप हैं तथा माया वा लोभ कषाय राग रूप हैं। क्रोध को द्वेष रूप इस लिये कहा कि

क्रोध करने के बाद शरीर एक दम संतप्त हो जाता है, कांपने लगता है, मुख की कान्ति बिगड़ जाती है कभी कभी अतिक्रोध के कारण मनुष्य बहरा गूंगा तक होजाता है, स्मरण शक्ति नष्ट होजाती है क्रोधी अपने माता पिता बंधु आदि तकभी घात कर डालता है। कहने का सारांश यह है कि क्रोध सभी अनर्थों की जड़ है। इसी प्रकार मानकषाय भी द्वेष रूप है, क्यों कि क्रोध के पीछे होती है इस लिये क्रोध सम्बन्धी सभी अनर्थ इससे भी उत्पन्न होते हैं। माया राग रूप है क्योंकि वह प्रिय वस्तु के आलम्बन से उत्पन्न होती है दूसरे माया करने के उत्तर काल में मनुष्य के हृदय में एक प्रकार का संतोष उत्पन्न होता है कि देखो मैं ने जरा सी पालिसी करके या छल करके अपना कैसा काम बना लिया इत्यादि। इस दृष्टि से माया को रोग रूप कहा है। लोभ कषाय भी राग रूप ही है, क्योंकि इस के करने से मनुष्य को एक विशेष जाति का आल्हाद उत्पन्न होता है। प्रायः सभी लोग कुछ रुपयों को बचत होने पर या व्यय के स्थान पर व्यय न करने पर मन ही मन बड़ी खुशी का अनुभव करते हैं इसी कारण उसे रागरूप कहा है।

शंका—क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों तो द्वेष रूप हैं क्यों कि ये आस्रव के कारण हैं। जो आस्रवके कारण हैं वे रागरूप कैसे हो सकते हैं?

समाधान— आपका कहना सत्य है, किन्तु यहां पर तो केवल आल्हाद उत्पन्न होने के कारण माया, और लोभको राग कहा है जिससे कोई दोष नहीं है। अथवा 'राग' भी तो स्वयं दोष रूप ही है।

अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये चारों ही नोकषाएं द्वेषरूप, हैं, क्योंकि क्रोधके समान ये भी अशुभ की कारण हैं, अशान्ति उत्पन्न करने वाली हैं। हास्य, रति, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक वेद रागरूप हैं। क्योंकि इनके करते हुये भी मनुष्य एक प्रकारका आनन्द अनुभव करता है। इसलिये लोभके समान रागका कारण होने से इन्हें भी राग ही कहा है।

व्यवहारनयकी अपेक्षा— क्रोध, मान, माया ये द्वेषरूप हैं और लोभ राग रूप है।

शंका— क्रोध और मान को द्वेष कहना तो न्यायोचित है क्योंकि लोक में इन दोनों का द्वेषरूप ही व्यवहार देखने में आता है। किन्तु माया तो द्वेषरूप नहीं है क्योंकि उसका द्वेषरूप व्यवहार ही नहीं देखने में आता है?

समा०—यह कहना उचित नहीं, क्योंकि माया करने पर लोकमें विश्वास उठ जाता है, विश्वासघाती कहलाने से लोकनिन्दा भी पैदा होती है। लोक निन्दा आदि के सुनने से आत्मा में सदा ही एक प्रकारकी बेचैनी या दुःखकी अनुभूति हुआ करती है, फिर यह माया रागरूप कैसे मानी जा सकती है। इसलिये इस नय की दृष्टिसे माया द्वेषरूप ही है।

लोभ राग रूप है, क्योंकि लोभसे सुरक्षित द्रव्य भविष्यमें सुखी जीवनका कारण है।

नोकषायों में से इस नयकी दृष्टिसे स्त्रीवेद, पुरुष वेद रागरूप हैं, शेष सभी नोकषायें द्वेषरूप हैं, क्यों कि हास्य आदिक लोक व्यवहार में द्वेषके ही कारण देखे जाते हैं। कहा भी है "कि रोगकी जड़ खांसी और लड़ाईकी जड़ हांसी।" इसी प्रकार शेष नोकषायों के विषय में भी समझना चाहिये।

ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा—क्रोध द्वेष रूप है, मान "नोद्वेष" (अल्प द्वेष) रूप है और 'नो राग' रूप है। माया भी 'नोद्वेष' और नो राग रूप है। लोभ राग

शंका—इस नय की दृष्टि से क्रोध को द्वेष और लोभको राग कहना उचित है, किन्तु मान और माया को नोद्वेष, नोराग क्यों कहा ?

समा०— इस नय की दृष्टि से मान और माया को केवल द्वेष रूप तो कह नहीं सकते क्योंकि मान या माया करने के समय तत्काल अंग संताप, मुख विवर्णता आदि नहीं देखने में आते हैं। इसी प्रकार केवल रागरूप भी नहीं कह सकते क्योंकि मान और माया के करने के क्षण में आल्हाद आदि की उत्पत्ति का अनुभव नहीं होता है। इस लिए मान और माया को "नोद्वेष" तथा नोराग रूप ही मानना युक्ति संगत है।

शब्दनय की अपेक्षा— चारों ही कषायें द्वेषरूप हैं क्योंकि कषाय शब्द का अर्थ ही इसका प्रमाण है अर्थात् जो आत्मा को कसे या दुखदे वह कषाय है, तो ऐसी कषायें राग रूप कैसे हो सकती हैं।

समभिरूढ़ नय की अपेक्षा—क्रोध, मान, माया कषायें नोराग हैं, क्योंकि लोक व्यवहारमें एक नियत मर्यादा तक किये गए क्रोध, मान, माया कषाय रूप आचरण द्वेष रूप नहीं माना जाता है क्योंकि ऐसी रूढ़ि पड़ जाती है। जैसे संस्तो व्यवहारस्तु न हि माया विवर्जितः इस लोक रूढ़ि को लीजिए इन नय की दृष्टि से माया करने वाला न तो कोई सुखानुभव के लिये मायाचारी करता है और न किसी को दुख पहुंचाने के लिये ही। किंतु एक रूढ़ि ऐसी पड़ जाती है जिससे कि अमुक सीमा तक माया करने पर भी कोई किसी को बुरा भला नहीं कहता है इसी प्रकार क्रोध मान भी मर्यादाके भीतर बुरे नहीं समझे जाते हैं ऐसी रूढ़ि है। जैसे लोग कहा करते हैं कि बिना कुछ कहे सुने (डांटे फटकारे) काम नहीं चलता इस उक्ति का मूल्य एक मर्यादित क्रोध की पुष्टि करता है, पर वह स्वार्थ का साधक होते हुए भी परार्थ का बाधक न होने से द्वेष संज्ञा को नहीं पाता है। जहां क्रोध परहितबाधक बन जाता है, वहां रूढ़ि नहीं रहती है जिससे अन्य नयों की अपेक्षा वह द्वेष रूप हो जाता है। ऐसा ही मानके विषय में भी समझना चाहिये।

इस नय की दृष्टि से 'लोभ' द्वेष रूप है, लोक व्यवहार में लोभी के लिये कंजूस आदि की रूढ़ि है और लोभी जब अपने लिये कृपण, कंजूस, सूम आदि नामों से पुकारा गया सुनता है तो महा-दुखी होता है।

अथवा क्रोध, मान, माया, नोराग हैं, क्योंकि, इनके करने से जीव के सन्तोष, परमानन्द आदि नहीं पाया जाता है। लोभ—यदि रत्नत्रय साधनों के विषय में किया जाय, तो कथंचित् रागरूप है। क्योंकि उससे स्वर्ग अपवर्ग की प्राप्ति देखने में आती है। अवशेष वस्तु विषयक लोभ रागरूप नहीं है, द्वेषरूप है क्योंकि उससे पाप की उत्पत्ति देखी जाती है।

एवंभूत नय की अपेक्षा—चारों ही कषायें और सभी नो कषायें द्वेषरूप हैं। क्योंकि उनके करने के साथ ही आठों कर्मों का आश्रय पाया जाता है, इस लोक और परलोक में अपाय और अवद्य देखा जाता है। इस नय की दृष्टि से—क्रोध, प्रीति का विनाश करता है, मान विनय का नाश करता है, माया मित्रता का या विश्वास का नाश करती है और लोभ सभी गुणों का विनाश करता है।

जैसा कि कहा है—

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणय णासणो।
माया मित्ताणि णासेइ, लोहो सव्वविणासणो॥

अथवा :—

कोधात्प्रीति विनाशं, मानाद्विनयोपघातमाप्नोति।
कापाट्याप्रत्ययहानि, सर्वगुणविनाशको लोभः॥२॥

उपसंहार—

इस प्रकार रागद्वेष का स्वरूप भली-भांति जान कर क्षमा-भाव से क्रोध को, मृदु-भाव से मान को, ऋजुभाव से माया को और सन्तोष से लोभ को जीतने का उपक्रम करो।

जो इन राग-द्वेषों से रहित हो जाते हैं उन्हें वीतराग कहते हैं।

'ऐसे वीतरागों के लिये मेरा नमस्कार हो।'

(जयधवल के आधार पर)

णेगम संगहाणं कोहो दोसो, माणो दोसो, माया पेज्जं, लोहो पेज्जं, तं जहा- कोहो दोसो, अंगसंतापकंपच्छायाभंगाद्यकाधिर्यमौन्य स्मृतिविलोपादि हेतुत्वात्, पितृमात्रादि मारणहेतुत्वात्, सकलानर्थ-निबंधनत्वात्। माणो दोसो, क्रोध पृष्ठभावित्वात्, क्रोधोक्ताशेष दोष निबंधनत्वात्। माया पेज्जं प्रियो वस्त्वालंबनत्वात्, स्वनिष्पन्युत्तर काले मनसः संतोषोत्पादकत्वात्। लोहो पेज्जं, आल्हादन हेतुत्वात्।

क्रोधमान माया लोभाः दोषः, आस्रवत्वादिति चेत्सत्यमेतत्, किंत्वत्र आह्लादन हेतुमात्रं विवक्षितं, तेन नायं दोषः। प्रेयसि प्रविष्ट दोषत्वाद्वा। मायालोभौ प्रेयाँसौ। अरइसोयभय दुगुंछाओ दोसो, कोहोव्व असुहकारणत्तादो। हस्सरइ इत्थि पुरिसणवुंसयवेया पेज्जं, लोहोव्व रायकारणत्तादो।

ववहारणयस्स कोहो दोसो, माणो दोसो, मायादोसो, लोहो पेज्जं।

(शंका) क्रोधमानौ दोष इति न्याय्यं, तत्र लोके दोषव्यवहारदर्शनात्, न माया, तत्र तद्व्यवहारानुपलंभादिति न, मायायामपि-अप्रत्यय हेतुत्व लोकगर्हितत्वयोरुपलंभात्। न च लोकगर्हितं (निंदितं) प्रियं भवति, सर्वदा निन्द्यतो दुःखोत्पत्तेः।

लोहो पेज्जं, लोभेन रक्षितद्रव्यस्य सुखेन जीवनोपलंभात्। इत्थि पुरिसवेया पेज्जं। सेसणोकसाया दोसो, तहा लोए संववहारदंसणादो।

उजुसुदस्स कोहो दोसो, माणो णो दोसो, णो पेज्जं, माया णो दोसो णो पेज्जं, लोहो पेज्जं, कोहो दोसो त्ति णव्वदे, सयलाणत्थहेउत्तादो। लोहो पेज्जं त्ति एदं पि सुगमं, तत्तो समुप्पज्जमाण दोसुवलंभादो।

(शंका) पंचवसेण कुभोयणं भुंजंतस्स मलीण पट्टपोरवसणस्स कत्तो आह्लादो ण तहेव तस्स संतोसुवलंभादो। किंतु माण मायाओ णो दोसो, णो पेज्जं त्ति एदं णव्वदे? पेज्ज दोस वज्जिदस्स कसायस्स अणुवलंभादो त्ति।

एत्थ परिहारो वुच्चदे — माण माया णो दोसो, अंगसंतावादीणमकारणत्तादो, तत्तो समुप्पज्जमाण अंगसंतावादओ-

दीसंतित्ति ण पच्चवट्ठादुं जुत्तं, माणणिबंधणकोहादो।
मायाणिबंधणलोहादो च समुप्पज्जमाणाणं तेसिमुवलंभादो।
ण च ववहियं कारणं माणवत्थावत्तीदो ण च वेवि पेज्जं, तत्तो
समुप्पज्जमाण आल्हादा णुवलंभादो। तम्हा माणमायावेवि-
णो दोसो णो पेज्जंति जुज्जदे।

सद्दस्स — कोहो दोसो, माणो दोसो, मायदोसो, लोहो
दोसो। कोहो माणो माया णो पेज्जं, लोहो सिया पेज्जं। कोह-
माणमायालोहा-चत्तारि वि दोसो, अट्ठकम्मासवत्तादो। इह-
पर लोय विसेस दोस कारणत्तादो। अत्रोपयोगी श्लोक:—

क्रोधात्प्रीति विनाशं, मानाद् विनयोपघातमाप्नोति।
शाठ्यात्प्रत्ययहानिं सर्वगुणविनाशको लोभ:॥१॥

कोहो माणो, माया णो पेज्जं, एदेहिंतो जीवस्स संतोसपरमा-
णंदाणमभावादो। लोहो सिया पेज्जं तिरयणसाहण विसय-
लोहादो, सग्गापवग्गाणमुप्पत्ति दंसणादो। अवसेसवत्थु-
विसय लोहो णो पेज्जं, तत्तो पावुप्पत्ति दंसणादो। ण च-
धम्मो ण पेज्जं सयल सुह दुःख कारणाणं धम्माधम्माणं पेज्ज-
दोसत्ताभावे तेसिं दोण्हंपि अभावप्पसंगादो।

जयधवलाटीका प० ५१ से आगे
टीका. ५।५।३८

श्री

१

एत्थ पडिवक्खपयडि बंधगद्धाणं माहप्प जाणावणट्ठं [illegible]-यद्धाण मप्पाबहुगं वुच्चदे। तं जहा — सव्वत्थोवा पुरिसवेद बंधगद्धा।[१] इत्थिवेद बंधगद्धा संखेज्जगुणा,[२] हस्सरदि बंधगद्धा संखेज्जगुणा,[१२] अरदि सोग बंधगद्धा संखेज्जगुणा,[२३] णवुंसय वेद बंधगद्धा विसेसाहिया।[२४]

अजमेर प्रति प० जयधवल पृ. १७७

२

तिरिक्खगई मणुस्सगईसु देवणिरय गईसु च एसो अप्पाबहुआलावो कायव्वो। एसो उच्चारणाइरियाण अहिप्पाओ।

अण्णे पुण वक्खाणाइरिया एवं भणंति — ओघप्पाबहुआलावो तिरिक्ख मणुस्स गईसु चेव होदि। णिरयगई पुण अण्णहा- तं जहा — सव्वत्थोवा पुरिसवेदबंधगद्धा।१। इत्थिवेद बंधगद्धा संखेज्जगुणा।९। हस्सरदि बंधगद्धा विसेसाहिया।११। णवुंसय वेदबंधगद्धा संखेज्जगुणा।२३। अरदिसोग बंधगद्धा विसेसाहिया।२४।

देवगईए णिरयगई भंगो हेट्ठिम बंधगद्धं मुवरिम बंधगद्धम्मि सोहिदे सुद्धसेसं विसेसपमाणं होदि।

जयधवल पृ. १७७

(३)

सम्मत्त जहण्णट्ठिदि विहत्ती कस्स? सुगमं, चरिमसमय अक्खीण दंसणमोहणीयस्स। कुदो? जो एक्को मिच्छाइट्ठिस्स तिव्वारंभ-परिणामेहि णिरयगईए सह वड्ढिदाउअस्स पच्छा तित्थयर-पदमूल मुवणमिय सम्मत्तं घेत्तूण अंतोमुहुत्तावसेसे आउए अधापमत्तापुव्वकरणाणि [illegible] कादूण मिच्छत्त सम्मामि-च्छत्ताणि अणियट्टिकाल अंतरे खविय अणियट्टिकरणद्धाए-चरिम समयम्मि सम्मत्त चरिमट्ठिदि खंडय चरिमफालिं घेत्तूण उदयादि गुणसेडि सरूवेण घादिय पुणो कदकरणिज्जो त्ति सण्णा कया। तस्स दंसणमोह खवणाविहत्थ कज्जलदो। तस्स काउलेस्सं पडिणियम पढम पुढवीए उप्पज्जिय अधट्ठिदि गलणाए चरिम गोवुच्छं घेत्तूण गालिदासेस गोवुच्छस्स सम्मत्त जहण्णट्ठिदि हेदाहो।

जय० पृ. १२५